शिक्षा का अधिकार कानून

प्रो. कृष्ण कुमार से लतिका गुप्ता की बातचीत

प्रो. कृष्ण कुमार इस बातचीत में शिक्षा के अधिकार कानून के आने को भारतीय समाज द्वारा सौ साल से सभी बच्चों की शिक्षा के लिए देखे गए सपने को यथार्थ में बदलते देखते हैं। साथ ही उनका मानना है कि इस कानून के आने के बाद शिक्षा के आन्तरिक एवं संस्थाई विमर्श का दायरा व्यापक समाज के लिए खुलेगा। इस कानून से निकलने वाली चुनौतियों को सामने रखते हुए वे कहते हैं कि इसे सही मायने में लागू करने के लिए संस्थागत एवं प्रशासनिक क्षमताओं में विस्तार करना होगा तथा इस कानून को सार्थक बनाने के लिए साझे सामाजिक प्रयासों की जरूरत होगी।

प्रश्न : 'शिक्षा का अधिकार' कानून को सरल शब्दों में कैसे समझा जा सकता है ?

उत्तर : यह कानून शिक्षा के पटल पर चल रहे कई संघर्षों को राज्य की स्वीकृति मिलने का प्रतीक है। इस कानून की यह महत्त्वपूर्ण कोशिश है कि धनाढ्य स्कूलों में 25 प्रतिशत आरक्षण ऐसे बच्चों को दिया जाए, जो आम स्थिति में उस स्कूल में नहीं पढ़ सकते। इस का मतलब बड़े स्कूल के आस-पास रहने वाले गरीब बच्चों को इस में पढ़ने का मौका दिया जाए और उन बच्चों के खर्च का प्रबंध सरकार की ओर से किया जाए। निजी स्कूलों के अलावा केन्द्रीय विद्यालयों और सभी तरह के विशेष श्रेणी विद्यालयों को कानून के दायरे में लाया गया है। यह अपनी तरह की एक महत्त्वपूर्ण कोशिश है। दिल्ली में इस तरह की कोशिश हुई थी जिसकी वजह से धीरे-धीरे अब कई निजी स्कूलों में आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के बच्चों को दाखिला मिला है। शिक्षा के अधिकार कानून के अंतर्गत यह प्रक्रिया सभी निजी स्कूलों के लिए अनिवार्य बना दी गई है। मुझे लगता है कि यह एक महत्त्वपूर्ण कोशिश है जो एक बहुत बड़े वर्गीय फासले को धीरे-धीरे पाटने की ओर बढ़ेगी। जाहिर है, जो लोग इस कानून के आलोचक हैं वे उस ऐतिहासिक और सामाजिक परिस्थिति को एक वस्तुगत ढंग से देखने में असमर्थ हैं जिसके बीच आज भारत में शिक्षा दी जा रही है।

एक तरफ बहुत समृद्ध स्कूल हैं जो एक छोटे से वर्ग के लिए बने हुए हैं और दूसरी तरफ बहुत बड़ी संख्या में बच्चे स्कूल से बाहर हैं। इन दो यथार्थों के बीच में कोई समझौता किस तरह से हो ? आज की तारीख में शिक्षा के विमर्श का जो स्तर है उसका ठीक से आकलन किया जाए तो मुझे लगता है कि यह कानून उस स्तर को आगे बढ़ाता है और कई नए रास्ते खोलता है।

प्रश्न : शिक्षा के संदर्भ में यह कानून क्या नया कर रहा है ? शिक्षा बाल अधिकार है, इसका क्या मतलब है ? किसी माता-पिता को समझाना हो तो क्या समझाएंगे ?

उत्तर : देखिए, माता-पिता की भूमिका तो यही है कि वे हर बच्चे को स्कूल में दाखिल करवाएं। इस अधिकार के संदर्भ में और नया करने से आशय ही यह है कि अब सरकार के ऊपर यह जवाबदेही और जिम्मेदारी आती है कि कोई बच्चा स्कूल से बाहर न रह जाए। अभी तक का तर्क माता-पिता पर इसकी जिम्मेदारी डालता था। पूरी दुनिया में यह एक मात्र ऐसा कानून है जो किसी बच्चे के स्कूल से बाहर रहने की जिम्मेदारी माता-पिता पर नहीं डालता है और न ही उनके लिए कोई दण्ड की व्यवस्था करता है। अब यदि कोई बच्चा स्कूल से बाहर पाया गया तो जवाबदेही सरकार के अलग-अलग स्तर के अधिकारियों पर आएगी। जाहिर है, यह घटना एक दिन में नहीं घटने जा रही है, लेकिन यह कानून इसकी व्यवस्था कर रहा है और यह मानता है कि शिक्षा बच्चे का एक मूलभूत अधिकार है। अभी तक अधिकार बड़ों के लिए होते थे, जैसे, अभिव्यक्ति का

कृष्ण कुमार : जाने-माने शिक्षाविद् वर्तमान में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रक्षिण परिषद, दिल्ली के निदेशक हैं।
संपर्क : निदेशक, एनसीईआरटी, श्री अरविन्दो मार्ग, नई दिल्ली-110016
लतिका गुप्ता : राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग में परामर्शदात्री।
संपर्क : राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग, 5वीं मंजिल, चन्द्रलोक भवन, जनपथ, नई दिल्ली-110001

अधिकार, जीवन का अधिकार, उपासना का अधिकार इत्यादि। शिक्षा के अधिकार का कानून इस अर्थ में भिन्न है कि इसका लाभ उठाने वाला अधिकार के उल्लंघन किए जाने की अवस्था में विरोध करने की स्थिति में नहीं है। इसलिए, इस अधिकार को एक विशेष दृष्टि से देखना जरूरी है कि अगर इस अधिकार का वास्तव में कोई मायना बच्चों के लिए होना है तो वह मायना तब ही हो सकता जब इस अधिकार का संज्ञान या इसकी अवधारणा हमारी नैतिक चेतना में शामिल हो जाए। हमारी चेतना से आशय वयस्कों की चेतना से है क्योंकि बच्चा स्वयं अपने अधिकार के खिलाफ नहीं लड़ सकता। पांच-छः वर्ष की आयु में बच्चा स्वयं यह जान भी नहीं सकता कि स्कूल का सदस्य होना मेरा अधिकार है।

प्रश्न : जब इस अधिकार को प्राप्त करने वाला व्यक्ति, जो कि बच्च है, अपने अधिकार की प्राप्ति से बेखबर है तो यह कानून लागू कैसे होगा ?

उत्तर : अधिकार दे देने से आशय यह है कि राज्य और राज्य के लिए काम करने वालों के ऊपर एक दबाव बनता है कि वे किसी बच्चे को स्कूल से बाहर न रहने दें। इस कानून में माता-पिता से सहयोग की अपेक्षा की गई है, लेकिन चूंकि माता-पिता गरीबी और इस तरह के अन्य कारणों की वजह से, जिन पर उनका भी नियंत्रण नहीं होता है, बच्चे को स्कूल से बाहर रखते हैं; इसलिए माता-पिता को दण्डित न करने का निर्णय हुआ है। मुझे लगता है कि कुल मिलाकर जो स्थिति इस कानून के जरिए बनती है वह राज्य पर, राज्य की विभिन्न संस्थाओं पर, राज्य के विभिन्न स्तरों पर ही यह दबाव डालती है, कि हर बच्चे को स्कूल में रखा जाए।

प्रश्न : शिक्षा का अधिकार एक बहुत ही व्यापक संकल्पना है। इसके तहत इस कानून में क्या छोटे-छोटे प्रावधान हैं जो मिलकर इस अधिकार को दे पाएंगे ?

उत्तर : देखिए, भारत के संदर्भ में यह एक अपनी तरह का विशेष कानून है। इसमें शिक्षा और शिक्षण के ऐसे विमर्श को, जो अब इस विषय का एक आन्तरिक विमर्श था एवं संस्थाई विमर्श था, कानून में जगह दी गई है। गुणवत्ता के मसले को लें, गुणवत्ता बच्चे और अध्यापक के अनुपात पर निर्भर करती है, सामग्री की उपलब्धता पर निर्भर करती है, इमारत की हालत पर, अध्यापकों के प्रशिक्षण पर, उनकी शैक्षिक योग्यताओं पर, बच्चों के प्रति रवैए पर, पाठ्यचर्या की संकल्पना के होने न होने एवं पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के बाल केन्द्रित होने न होने पर निर्भर करती है। ये तमाम चीजें शिक्षा का आन्तरिक विमर्श बनाती हैं और इन तमाम चीजों को इस कानून में बाकायदे, सशब्द लाया गया है। इसलिए जब इस तरह की घटनाएं घटेंगी, जिनमें इस अधिकार का उल्लंघन होगा, तो कानूनी लड़ाइयां सामाजिक संस्थाओं की ओर से या माता-पिता की ओर से लड़ी जाएंगी।

प्रश्न : आपकी कल्पना में इन कानूनी लड़ाइयों की खातिर कानून जगत के लिए क्या निहितार्थ हैं ?

उत्तर : लड़ाइयों में बीच-बचाव करने और निबटारा करने वाली न्यायिक संस्थाओं और पैरवी करने वाले वकीलों को शिक्षा के लिए तमाम संवेदनशील शब्दों का अर्थ धीरे-धीरे समझना होगा। उन्हें जानना होगा कि शिक्षा में गुणवत्ता का क्या अर्थ होता है, पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकें तथा बाल केन्द्रित होने न होने का क्या अर्थ होता है ? मूल्यांकन कैसे किया जाना चाहिए ? इस तरह की तमाम चीजें जो इस कानून में जिक्र का विषय बनी हैं उनके ऊपर अब एक नियमावली बन रही है जिससे कि इन मुद्दों को विस्तार से समझाया जा सकेगा। इस अर्थ में आप कह सकते हैं कि यह कानून शिक्षा के अधिकार के एक ज्यादा अमूर्त प्रस्ताव को एक बारीक शब्दावली देता है।

प्रश्न : अगर इस तरह के मुद्दे न्यायालय में जाएंगे तो वकीलों और न्यायधीशों की जिम्मेदारी बढ़ेगी। इस अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए जो संस्थागत काम शुरू होने हैं, आपकी नजर में वे क्या-क्या हैं ?

उत्तर : संस्थागत काम तो बहुत अधिक संख्या में हैं जो कि नीचे से नीचे भी होने हैं और सबसे ऊपर से ऊपर भी होने हैं। जैसे कि, शिक्षा मंत्रालय के स्तर पर इस कानून को अमल में लाने के लिए मार्ग-दर्शिकाएं बन रही हैं, उनको धीरे-धीरे सभी राज्यों की स्वीकृति प्राप्त होनी है। इस कानून को लागू करने के लिए सर्व शिक्षा अभियान में पैसे का इन्तजाम होना है। अभी तक, बच्चों का प्रवेश बढ़ाने के लिए पैसे का मुख्य माध्यम सर्व शिक्षा अभियान रहा है। सर्व

शिक्षा अभियान का पैसा, आप एक तरह से कह सकते हैं कि, न्यूनतम निवेश था। उस न्यूनतम निवेश को बढ़ाया जाना है और उससे जिस तरह की व्यवस्था होती थी उसको इस कानून में दिए गए मानकों तक ऊंचा किया जाना है, यानी कि बढ़ाया जाना है। इस काम के लिए भी केन्द्रीय स्तर पर एक समिति इस समय काम कर रही है जो बताएगी कि सर्व शिक्षा अभियान और इस कानून के बीच अभी जो फासला है उस फासले को पाटने के लिए अभियान के शेष वर्षों में कौन-कौन से कदम उठाए जाएं और कौन-कौन से नियम बदले जाएं। इसके बाद असली किस्सा शुरू होता है कि राज्य स्तर पर आज जो निदेशालय हैं, उन निदेशालयों की क्षमताओं का विस्तार होना है। अधिकारियों के पास आज इस काम की कोई शुरुआती समझ नहीं है। यह कानून अब और कानूनों की तरह प्रशासनिक, अकादमी के पाठ्यक्रम में आएगा। धीरे-धीरे प्रशासक समझेंगे और प्रशासकों की इसको अमल में लाने की इच्छा का विस्तार होगा और उस सबके साथ में जिला स्तर और राज्य स्तर पर प्रशासन द्वारा चलाई जा रही शिक्षा की संस्थाओं की क्षमता में विस्तार होगा।

प्रश्न : जिला स्तर की शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में आप किस तरह की हलचल की कल्पना कर रहे हैं ?

उत्तर : जिला स्तर पर एक मुख्य संस्था शिक्षण प्रशिक्षण की है जो कि इस समय 'डायट' कही जाती है। डायट का जिम्मा है कि वह न केवल सरकारी ढांचे के भीतर बल्कि सरकारी ढांचे के बाहर जो संस्था चल रही हैं उन सभी में शिक्षा के उद्देश्यों के लिए या शिक्षा की ताजी नीतियों के लिए काम करें। एक समान्तर प्रक्रिया के तौर पर, इन जिला स्तरीय संस्थाओं के लिए भी केन्द्र से ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के बचे हुए वर्षों में और आने वाली बारहवीं पंचवर्षीय योजना में काफी बड़ी मात्रा में पैसे को बढ़ाया जा रहा है। इन सभी योजनाओं की संरचना को भी बदलने का प्रयास किया जा रहा है क्योंकि जो जिला स्तरीए डायट हैं वे कोई अच्छी हालत में नहीं हैं। देश के अधिकांश हिस्सों में और दूसरी तरफ शिक्षक प्रशिक्षणों का बहुत बड़ा हिस्सा अब बिलकुल ही बाजार की शक्तियों के सुपुर्द हो गया है। ये शक्तियां न तो शिक्षा को समझती हैं और न शिक्षण के लिए उपयोगी प्रशिक्षण के स्तर की बात को समझती हैं। एक बहुत ही अराजकता की स्थिति इस पूरे क्षेत्र में फैली हुई है। इस अराजकता को आसानी से किसी सभ्यता में नहीं बदला जा सकता है। हमारे पास इसके लिए दो ही उपाय हैं। एक तरफ विश्वविद्यालय जैसी संस्थाएं हैं जो अभी तक इस सबसे, आप कह सकती हैं, बेगानी हैं और अपने काम में मस्त हैं। उनका अपना काम वैसे तो ज्ञान का सृजन करना है, लेकिन अपने आस-पास के समाज से उनका कोई लेना-देना नहीं है। इसलिए वे विश्वविद्यालय, जिनमें शिक्षा विभाग भी हैं, अब भी इस समय, कानून के तहत जो नई सामाजिक-ऐतिहासिक स्थिति आई है उससे विमुख हैं। विश्वविद्यालयों को इस मुहिम में शामिल होना है। दूसरी तरफ हैं गैर-सरकारी संस्था। इनमें से बहुत-सी संस्थाओं ने अब तक इस कानून के बनने के पहले बहुत बड़ी संख्या में ऐसे बच्चों को, जिनको सरकार ने एक तरह से मान लिया था कि हमारे बस में नहीं है, शिक्षित करने के अपने-अपने ढंग के महत्त्वपूर्ण प्रयास किए हैं और सर्व शिक्षा अभियान में भी बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। उन संस्थाओं को भी अब इस कानून के तहत एक अपनी नई भूमिका पहचाननी है। ऐसी संस्थाओं की अभी तक बहुत-सी स्थितियों में विरोध की भूमिका रहती थी। लेकिन, इस समय एक नई स्थिति है, उस नई स्थिति को कैसे बच्चों के हित में उपयोग में लाया जाए, यह सोचना है। इन दोनों दिशाओं में सरकार देख रही है और उम्मीद करती है कि विश्वविद्यालयों और इन गैर-सरकारी सामाजिक संगठनों के सहयोग से शिक्षक प्रशिक्षण के काम में सुधार होगा। धीरे-धीरे शिक्षकों की चेतना का विस्तार होगा और प्रशासकों की समझ बढ़ेगी। उपेक्षित वर्गों के बच्चे हैं, लड़कियां हैं, आदिवासी एवं अल्प-संख्यक समुदायों के बच्चे हैं, जो इस समय शिक्षा व्यवस्था से किसी न किसी बहाने बहिष्कृत कर दिए जाते हैं, उन सभी के दृष्टिकोण से इस कानून को समझने का सिलसिला शुरू होगा।

प्रश्न : यह कानून सीधे-सीधे शिक्षकों के लिए क्या-क्या कहता है ? शिक्षकों से क्या अपेक्षा है ? क्या उनके लिए कुछ प्रावधान हैं और किन चीजों पर मनाही है ?

उत्तर : शिक्षकों के बारे में इस कानून में उनकी अकादमिक और प्रशिक्षण संबंधी योग्यताओं के मानक तय करने के लिए एक राष्ट्रीय स्तर की संस्था को जिम्मेदारी सौंपने की बात है। यह स्पष्ट नहीं है कि सरकार अन्त में किस संस्था को चुनेगी। संभवतः आज की तारीख में ऐसा लगता है कि जो राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षक प्रशिक्षण की परिषद् है,

एनसीटीई, उसको यह जिम्मेदारी मिलेगी। चुनी गई संस्था द्वारा जारी की गई न्यूनतम अकादमिक और प्रशिक्षण संबंधी अपेक्षाएं हर शिक्षक पर लागू होंगी। इस कानून के अनुसार हर राज्य सरकार के लिए यह एक बाध्यता होगी कि तय सीमा से कम योग्यता वाले शिक्षक नहीं लिए जा सकेंगे। यह कानून व्यवस्था करता है कि शिक्षकों की भर्ती बड़े पैमाने पर तुरन्त की जाए जिससे की औसत अनुपात तीस बच्चों पर एक शिक्षक हो जाए। कानून में कक्षा छः से आठ के लिए साफ लिखा गया है कि विषयवार अध्यापकों की नियुक्ति जरूरी होगी। इस कानून के आने के बाद कक्षा एक से आठ तक के बीच में बहुत बड़ी तादाद में शिक्षकों की नियुक्ति आवश्यक होगी। पांच वर्ष के भीतर शिक्षकों का वैसा प्रशिक्षण अवश्य होगा जो उस जिम्मेदार संस्था के द्वारा तय किया जाएगा, जिसको यह काम सरकार सौंपेगी।

प्रश्न : एक तरफ तो हम कह रहे हैं कि हमें बहुत जल्दी बहुत सारे शिक्षक चाहिएं, दूसरी तरफ हम यह भी कह रहे हैं कि शिक्षक प्रशिक्षण को सुधरना है यानी कि अगले पांच-छः साल में हमारी व्यवस्था में ऐसे बहुत सारे शिक्षक घुसने वाले हैं जिनका सेवा पूर्व प्रशिक्षण बहुत कमजोर रहा है या शायद हुआ ही नहीं है। क्या हम यह उम्मीद कर रहे हैं कि वे नौकरी के दौरान ही इस कानून के तहत जो अपेक्षाएं हैं उनमें ढल पाएंगे ?

उत्तर : देखिए, यह साफ है कि आदर्श स्थिति कहीं भी नहीं है। एक अर्से से शिक्षक प्रशिक्षण का अपवर्जन होता चला गया है और आज की स्थिति में आपका कहना एकदम सही है कि लाखों की तादाद में अप्रशिक्षित या अर्द्ध-प्रशिक्षित शिक्षक हमारी व्यवस्था में मौजूद हैं, खासकर उत्तर भारत और उत्तर-पूर्व के राज्यों में, इनकी संख्या बहुत अधिक है। चूंकि इस कानून के अंतर्गत यह प्रावधान है कि हर हालत में शिक्षक और बच्चों के अनुपात को इस कानून के लागू होते ही एक निश्चित मानक पर खरा उतरना है, इसलिए लाखों शिक्षकों की नियुक्ति की जाएगी जो प्रशिक्षित नहीं होंगे, शायद उनके पास केवल अकादमिक योग्यताएं होंगी और हो सकता है कि कुछ राज्यों में वे भी उपलब्ध न हों। राज्यों को विशेष छूट दी जाएगी कि कम अकादमिक योग्यता वाले शिक्षकों को नियुक्त करें और नियुक्ति के बाद उनकी अकादमिक योग्यताओं और उनके प्रशिक्षण संबंधी योग्यताओं को पूरा करें। जाहिर है कि यह एक बीच की स्थिति है और इसमें एक नई तरह की शुरुआत है। इस कानून के तहत जो आदर्श स्थिति बननी चाहिए उस तक पहुंचने में पांच से दस वर्ष का समय कम से कम लगेगा। वह भी तब जब वित्तीय दृष्टि से परिस्थितियां लगातार ठीक रहीं और जो इस समय एक आर्थिक समस्या है वह किसी हद तक दूर हो, इस तरह के कलेण्डर को लेकर तो चलना ही होगा। बहुत वर्षों से व्यवस्था में घुस चुकी विसंगतियों को एकदम से दूर नहीं किया जा सकता। अगर दिशा सही रहे तो वे धीरे-धीरे ही दूर हो सकती हैं।

पाठ्यचर्या के संदर्भ में शिक्षकों की जो जिम्मेदारियां इस कानून मे बताई गईं हैं, उन जिम्मेदारियों में सबसे महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारियां दो हैं। एक तो यह कि शिक्षक किसी भी हालत में शारीरिक और शाब्दिक दण्ड का प्रयोग नहीं करेंगे। दूसरे, वे मूल्यांकन के लिए पांचवीं, आठवीं या किसी भी अन्य कक्षा में बोर्ड परीक्षा जैसी पद्धति इस्तेमाल नहीं करेंगे, उसकी जगह सतत मूल्यांकन की बात कही गई है। कानून की नियमावली में यह स्पष्ट किया जाना बाकी है कि सतत मूल्यांकन से क्या आशय है ? सतत मूल्यांकन से यह आशय है कि अध्यापक की पद्धति ही ऐसी हो कि वे बच्चों के अधिगम का जायजा लगातार लेते रहें और हर बच्चे का स्तर खुद जानते हुए, उसको बढ़ाने का प्रयास करते रहें। इसके अलावा कानून में व्यापारिक स्तर के ट्यूशन पर, जो बहुत से अध्यापक पढ़ाते हैं, पूर्ण प्रतिबंध लगाने की बात की गई है।

प्रश्न : इस कानून में शिक्षकों के लिए क्या प्रावधान हैं ?

उत्तर : इस कानून में बहुत स्पष्टता से छोटे आकार, थोड़े बड़े आकार तथा थोड़े और बड़े आकार के स्कूलों के लिए शिक्षकों की निश्चित संख्या बताई गई है कि कम से कम कितने शिक्षक होने ही चाहिएं। प्रारंभिक शिक्षा का जो आखिरी स्तर है, कक्षा छः से आठ, उसमें विषयवार शिक्षकों की बात की गई है और जो औसत अनुपात बनेगा वह 30 बच्चों पर एक शिक्षक का बनेगा। इस तरह का प्रावधान कानून में निकलता है। ये सारी चीजें अपने आप में भविष्यदर्शी हैं क्योंकि अभी तक हम लोग इस तरह का अनुपात प्राप्त करने में असमर्थ रहे हैं। सिवाय यशपाल समिति

की रिपोर्ट के, जो 1991 की है, कभी किसी ने इस तरह की अनुशंसा भी नहीं की थी कि भारत में 30 और 1 का अनुपात आवश्यक है। कला के लिए, दस्तकारी के लिए भी स्कूल में शिक्षक की व्यवस्था होनी है। यह बात भी कानून के स्तर से आने से उसका एक स्थान बनता है। उम्मीद करनी चाहिए कि इसके आधार पर फिर नियुक्तियां हो सकेंगी। क्योंकि अगर कला के क्षेत्र में देखें तो राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 की अनुशंसाओं के पालन के रास्ते में जबरदस्त बाधाएं बनी हुई हैं। इसलिए इस कानून में कला की बात उठ जाने से हमें लगता है कि बहुत-सी नीतियों के बन जाने का रास्ता थोड़ा-थोड़ा साफ हुआ है, लेकिन राह है बहुत लम्बी।

प्रश्न : इस मुद्दे पर जो आलोचना है कि इस कानून की कि शुरुआती पांच कक्षाओं में पांच अध्यापक नहीं दिए गए हैं, उस पर आपका क्या विचार है ? 100 बच्चों पर तीन अध्यापक दिए गए हैं।

उत्तर : देखिए, जहां पर 100 से ज्यादा बच्चे होंगे वहां तो पूरे अध्यापक दिए गए हैं। बहुत छोटे स्कूल के लिए जिसमें 30-40 या 60 बच्चे हैं, इतने छोटे स्कूलों में शिक्षकों की कक्षावार पूरी संख्या नहीं दी गई है। उसकी जगह आप कह सकते हैं 150 बच्चों का स्कूल होगा उसमें एक कक्षा के लिए कम से कम एक अध्यापक होगा और इसका प्रावधान इस कानून में किया गया है। इसको लेकर अगर तरह-तरह की गणनाएं की जाएं तो आप पाएंगे कि देश में बहुत बड़ी संख्या में ऐसे स्कूल मिलेंगे, जैसे उत्तराखंड में, जहां मुश्किल से 25 से 30 बच्चे हैं और तीन शिक्षक उनको पढ़ा रहे हैं। दूसरी तरफ ऐसी शालाएं हैं जहां पर 500 बच्चे हैं और शिक्षकों की संख्या बहुत कम है। इन विसंगतियों के चलते इस कानून में एक तरह का प्रारूप दिया गया है। लेकिन, प्रारूप का आशय यह नहीं है कि अगर कोई सरकार 100 बच्चों के स्कूल में भी 5 शिक्षकों का प्रावधान कर सकती है तो भी न करे। इस कानून में एक न्यूनतम स्तर की बात की गई है और जिस राज्य सरकार के पास इससे अधिक वित्तीय प्रबंधन की गुंजाइश है वह ज्यादा शिक्षक मुहैया करवा सकती है। आज की तारीख में हम सबको यह मालूम होना चाहिए कि शिक्षा के लिए पर्याप्त वित्त उपलब्ध नहीं है और पूरी व्यवस्था लगातार तंगी में काम करती है। इस समय जो स्थिति है वह स्थिति वित्तीय दृष्टिकोण से आज से 10 वर्ष पहले के मुकाबले बेहतर है, लेकिन किसी भी स्थिति में उसकी तुलना एक आदर्श स्थिति से कतई नहीं की जा सकती। लोग हमें बार-बार यह याद दिलाते हैं कि कोठारी आयोग ने राष्ट्रीय उत्पाद का 6 प्रतिशत देने की बात की है, अभी हम उससे भी दूर हैं जबकि आवश्यकता तो 10 प्रतिशत तक जाने की है।

प्रश्न : फिर भी हमने कानून तो बना ही लिया है।

उत्तर : जी हां, और अब कानून से वित्तीय संस्थाओं पर भी दबाव पड़ेगा। इस समय जो वित्त आयोग है उसने अभी तक शिक्षा के क्षेत्र में कोई भूमिका नहीं निभाई है। इस कानून के बन जाने से वित्त आयोग भी अपनी भूमिका देख रहा है कि उसको कुछ राज्यों के लिए विशेष वित्त का प्रबंध करना पड़ेगा। अभी न तो इसका कोई इतिहास है और न ही इसकी कोई मिसाल रही है। लोकतंत्र में हमारे पास और क्या रास्ता है सिवाय इसके कि दबाव बनाने वाली स्थितियां पैदा हों और यह कानून उसी तरह की स्थिति पैदा कर रहा है।

प्रश्न : मतलब, शिक्षा का कुछ कद ऊंचा उठ गया है, इस कानून के कारण ?

उत्तर : बिलकुल उठा है। बल्कि मैं तो समझता हूं इतना छोटा-सा भी एक प्रसंग आप लें कि आज किसी कानून के महाविद्यालय में जाएं, जहां कानून की शिक्षा दी जा रही है और हजारों वकील उसमें से निकल रहे हैं। आज तक ऐसे महाविद्यालय में, कानून के पाठ्यक्रम में शिक्षा के बारे में कुछ भी नहीं बताया जाता था। आज के बाद यह जरूरी होगा कि भविष्य का वकील शिक्षा के बारे में कुछ जाने, और कुछ ही नहीं काफी जाने। इस तरह की किताबें पहली बार छपेंगी, सामग्री आएगी तो उससे समाज में, जिसे आप 'सिविल सोसाइटी' कहते हैं जिसमें एक वकील बहुत केन्द्रीय व्यक्ति होता है, उसमें शिक्षा को लेकर कुछ जानकारी बढ़ेगी। एक अहम मुद्दा है कि बच्चों को क्यों नहीं मारना चाहिए। अगर आप इसको लेकर सारे देश में एक सर्वेक्षण करें तो पाएंगे कि समाज के सारे तबके यह मानते हैं कि यदि बच्चों को दंडित नहीं किया जाएगा तो वे उद्दंड हो जाएंगे। मराठी भाषा में शिक्षा का अर्थ ही होता है प्रताड़ना। ये परंपराएं हमारी संस्कृति में रची हुईं हैं और इनसे उबरने के लिए न प्रशासनिक, न कानूनी, न प्रशिक्षण संबंधी प्रयास पर्याप्त हो सकते हैं, जब तक एक सामाजिक-सांस्कृतिक विमर्श का माहौल न बने। उस विमर्श के निर्माण और आगे की स्थिति

के लिए एक आधार देता है और यह बच्चों को मारने-पीटने और उनको डराकर कुछ न कुछ पढ़ा देने का मुद्दा है, उस पर बहुत व्यापक जागरण के लिए एक जमीन बनाता है।

प्रश्न : इस कानून में बच्चों की पिटाई और सजा का जो मुद्दा है वह स्पष्ट नहीं है क्योंकि बच्चे की पढ़ाई का अपराध अभी भरतीय दंड संहिता में शामिल नहीं है। अगर एफ.आई.आर. कर भी दें और मुकदमा चले तो आसानी से यह साबित किया जा सकता है कि बच्चे के हित में ही मारा गया था।

उत्तर : देखिए, जब यह कानून बन रहा था तो मुझे प्रो. शांता सिन्हा और श्री फाली नरीमन से मिलने का मौका मिला था। प्रो. शान्ता सिन्हा राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग की अध्यक्षा हैं और श्री फाली नरीमन देश के मशहूर वकीलों में गिने जाते हैं। उन्होंने हमें उस समय यही बताया कि इस समय जो भारतीय दंड संहिता है, उसमें अगर आप किसी बच्चे को मारते-पीटते हैं और यह सिद्ध कर देते हैं कि उसके हित में आप यह कर रहे थे तो आपके खिलाफ मुकदमा नहीं बनता है। उन्होंने कहा था कि अगर शिक्षा के अधिकार कानून में बच्चे को मारने पर प्रतिबन्ध का प्रावधान हो तो फिर उसके आधार पर भारतीय दंड संहिता में संशोधन की बात उठेगी। जब दो कानूनों में अन्तर्विरोध होता है तो पिछले कानून में सुधार करने की स्थिति बनती है। आप सोचिए, भारतीय दंड संहिता डेढ़ सौ साल से चल रही है, उसके मुकाबले यह पहली बार हुआ है कि किसी कानून में ऐसी व्यवस्था आई जो बच्चों के मामले में संहिता को अन्तर्विरोध की स्थिति में डालती है। अब उसी संसद ने जिसने इस कानून को पास किया है, उसी संसद में भारतीय दंड संहिता की इस व्यवस्था को बच्चों के लिए अलग करना होगा, सुधारना होगा।

प्रश्न : मतलब कानून नई संभावनाएं खोलेगा न कि संघर्षों पर मिट्टी लीपकर उन्हें ठंडा कर देगा।

उत्तर : जी हां। शिक्षा के कई मुद्दों पर यह कानून राज्यों के लिए नए किस्म के प्रबंधन की विवशता पैदा करेगा। कुछ मुद्दों पर यह प्रशिक्षण संस्थाओं और इस तरह की शोध संस्थाओं के लिए कई नए मुद्दे सतह पर लाता है जिन पर तुरंत काम करना होगा। प्रशासन की दृष्टि से यह एक तरह की अंतिम तारीख का निर्धारण करता है कि इस कानून के अमल में आने के छः महीनों के भीतर इतनी नौकरियां सृजित करने की तैयारी हर सरकार को कर लेनी चाहिए जिससे उनका औसत शिक्षक-बालक का 1 : 30 पर आ जाए। इससे शिक्षकों के कम से कम 11-12 लाख पद सृजित होंगे। पांच साल के अन्दर उनकी भर्ती होगी और उनका प्रशिक्षण होगा। इस तरह की तमाम कामों की अंतिम तारीख यह कानून तय कर रहा है। हमें इस कानून को इस रूप में देखना चाहिए कि यह भविष्य के लिए कई तरह की संभावनाएं और कई तरह की राहें खोलता है जिन पर समाज और समाज से भी ज्यादा संस्कृति को आगे बढ़ाता है। हम लोग हमेशा समाज की बात इस तरह से करते हैं जैसे वह कोई एक बनी बनाई चीज हो, एक ढांचा हो और संस्कृति की बात हम करते ही नहीं जो एक तरह से समाज का नियमन करती है। संस्कृति संचालित करने वाली एक अदृश्य शक्ति है और कभी वह कटघरे में खड़ी नहीं होती क्योंकि हम सब मानते हैं कि भारतीय संस्कृति महान है, उसमें बातचीत और बदलाव की कोई गुंजाइश नहीं है।

प्रश्न : इस कानून से सांस्कृतिक संदर्भ में हलचल क्या पैदा होने वाली है ?

उत्तर : आज जब बच्चों की बात आ रही है, लड़के-लड़कियों की बात आ रही है तो सांस्कृतिक दृष्टिकोण से यह कानून एक और विवशता लाता है कि हम सांस्कृतिक समीक्षा का काम शुरू करें कि हमारी संस्कृति कहां-कहां बाल विरोधी है। हम यह काम शुरू करेंगे तो देखेंगे कि रह-रहकर हमारी संस्कृति शैशवकाल के बाद से ही बच्चे के रास्ते में तरह-तरह की रुकावटें पैदा करती है। गिने-चुने मामलों में समाज वैज्ञानियों ने ऐसी रुकावटें पहचानी हैं। जैसे लड़कियों को लेकर हम पहचान रहे हैं कि हमारी सांस्कृतिक विरासत में उनके लिए बचपन है ही नहीं। यह मामला केवल किशोरावस्था का ही नहीं है। यह मामला किशोरावस्था की तैयारी से ही शुरू हो जाता है। यह संस्कृति समीक्षा इस कानून से शुरू नहीं हुई है, लेकिन इस कानून से एक गहरी विवशता तो पैदा हुई है।

प्रश्न : क्या यह कानून विद्यार्थियों की श्रेणी में लड़कियों को अलग से पहचानता है ?

उत्तर : नहीं, यह कानून तो बच्चा शब्द की ही रचना करता है। यह काम अब हमारा है कि इस कानून को लेकर हम

लड़के और लड़कियों की अलग-अलग व्याख्या करें। इस दिशा में जो दो समितियां काम कर रही हैं, उनमें से सर्व शिक्षा अभियान वाली समिति में एक सदस्य मैं भी हूं और हम लोगों को यह मौका मिला है कि इस तरह के मुद्दे उठा सकें। इस कानून के पालन के रास्ते में आने वाले जेण्डर संबंधी मुद्दे हैं, बाधाएं हैं, जो सर्व शिक्षा अभियान में पहचाने गए हैं; उनसे पार पाने का रास्ता इस कानून की तरफ ले जाता है। ऐसा सारा काम इस समय चल रहा है, लेकिन कानून में जो बाल केन्द्रित नजरिए की बात की गई है कि बच्चे के लायक इस व्यवस्था को बनाया जाना है, वह आज तो मौजूद नहीं है।

प्रश्न : इस कानून में प्रावधान है कि बच्चा कभी भी स्कूल में प्रवेश ले सकता है और स्कूल उसको लौटाएगा नहीं, स्कूल में उसको दाखिला मिलेगा। इसमें शिक्षक के ऊपर तो बहुत भारी जिम्मेदारी आने वाली है। इसका अभिप्राय यह भी है कि ऐसी लड़कियां जिनकी बचपन में शादी हो गई है उन्हें भी स्कूल में लाया जाएगा। वे बच्चे जो स्कूल जाकर भी पढ़ना-लिखना सीख नहीं पाए, उनको भी स्कूल में लाया जाएगा तो शिक्षक की जो जिम्मेदारी बढ़ेगी। इसके लिए नीति और संस्था के स्तर पर क्या सोचा जा रहा है ? यह कोई हल्की-फुल्की बात नहीं है।

उत्तर : यह बात आपने बिलकुल ठीक कही। जिम्मेदारी अगर सिर्फ शिक्षक के कन्धों पर आ जाएगी तो यह बहुत गलत होगा। बल्कि इस कानून के आधार पर हम लोगों ने राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 की निर्माण समिति में भी विचार किया था और उसमें भी हमारी एक शिक्षक सदस्य ने यह मुद्दा इन्हीं शर्तों पर उठाया था कि अगर यह कानून अन्त में शिक्षक के ही कन्धे पर बोझ बनने जा रहा है तो शिक्षक का कन्धा तो पहले से ही बहुत झुका हुआ है। इस कानून का आशय ही यह है कि पूरी व्यवस्था में एक सकारात्मक लचीलापन आए कि बच्चों को साल के किसी भी समय प्रवेश दिया जाए और उसकी आयु के अनुकूल कक्षा में दिया जाए। बच्चे के कक्षा में बने रहने के लिए या फिर उस कक्षा के स्तर पर सफल होने के लिए जो आवश्यक हैं, सरकार उसका इंतजाम करे। यह मामला शिक्षक को सिर्फ प्रशिक्षित कर देने तक का नहीं है, बल्कि कक्षा के ढांचे में परिस्थितियों को पैदा करने का है, संसाधनों का है और प्राचार्य के ऊपर जो अधिकारी हैं, उनकी समझ विकसित करने का भी है।

कल्पना कीजिए कि एक बच्चा है जो नवम्बर के महीने में पंजाब के एक स्कूल में पहुंचता है। वह बच्चा आ रहा है सीधे आन्ध्र प्रदेश के तेलंगाना से, जहां से बहुत मजदूर इस समय पंजाब और हरियाणा जाते हैं। मान लीजिए, उसकी आयु 9 साल है और उसकी आयु के अनुरूप आपको उसे चौथी कक्षा में प्रवेश देना है। वह बच्चा पंजाबी और हिन्दी का एक भी शब्द नहीं समझता है तो यहां पर जाहिर है कि मुद्दा शिक्षक या प्राचार्य का नहीं है। यह मुद्दा सीधे-सीधे पंजाब की सरकार का होगा कि वह इस बच्चे के लिए तेलगू शिक्षक की व्यवस्था करे। अब आज की तारीख में यहां बैठकर, जैसे आप से ही बात हो रही है तो, लग रहा है कि हम पागलपन की बात कर रहे हैं। एक बहुत सुदूर भविष्य की कल्पना में खो गए हैं।

प्रश्न : इस उदाहरण में तो आपने भाषा पर आधारित संवैधानिक प्रावधान के गहरे मुद्दे को उठाया है। इस प्रावधान और शिक्षा के आधिकार कानून में क्या तालमेल बैठता है ?

उत्तर : आज तक कहीं भी संविधान की उस धारा के अनुसार ठीक से काम नहीं हो सका है कि एक राज्य में दूसरे राज्य की भाषा के लिए पर्याप्त प्रावधान हो। हमने ग्रामीण इलाकों से शहरी इलाकों में होने वाले प्रवसन पर ध्यान ही नहीं दिया है। यह बड़े पैमाने पर हो रहा है और लाखों की तादाद में मजदूर एक राज्य से दूसरे राज्य में जाकर मजदूरी कर रहे हैं और उनके साथ में लाखों की तादाद में छोटे बच्चे उन राज्यों में पहुंचे हैं। बिहार के मजदूरों का असम में क्या होता है, उसके बारे में हम खबरें पढ़ते रहते हैं लेकिन अगर हम इसको ज्यादा बड़े पैमाने पर देखें तो आपको हिमाचल में आंध्र के, यहां तक कि तमिलनाडु के मजदूर मिलेंगे। आपको कर्नाटक से आए हुए, महाराष्ट्र से आए हुए लोग राजस्थान में मिलेंगे। यह मामला केन्द्रीय सेवा के कर्मचारियों या डाक विभाग के कर्मचारियों तक सीमित नही हैं। पूरे देश में हमारे मजदूर और भूमिहीन किसान घूम रहे हैं और उनके साथ उनके बच्चे भी। एक बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया गरीबों के स्तर पर चल रही है जिसकी ओर प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था ने कोई ध्यान ही नहीं दिया है और न ही अभी तक इसकी कोई आवश्यकता समझी गई।

दिल्ली विश्वविद्यालय के परिसर में, जहां मैं रहता हूं, वहीं पर लगभग डेढ़-दो साल छत्तीसगढ़ से आए हुए मजदूरों की एक बस्ती, हमारे बहुत खूबसूरत वनस्पतिशास्त्र विभाग के उद्यान के ठीक बगल में लगी रही। वहीं पास में देहली स्कूल ऑफ सोशल वर्क है और थोड़ी दूर पर केंद्रीय शिक्षा संस्थान है। इस परिसर में आठ नामी कॉलेज हैं, कितने ही विभाग हैं लेकिन वे बच्चे डेढ़ वर्ष में कुछ भी सीखे बगैर इस विश्वविद्यालय से चले गए। मुझे अफसोस तब हुआ जब मैंने देखा कि आखिरी महिनों में वे बाकायदा वहां घूमने वाले लोगों से भीख मांगने लगे थे क्योंकि उन्होंने जान लिया था कि उनको किस रूप में देखा जाता है। यह पूरी परिस्थिति दिखाती है कि हमने अभी तक ग्रामीण इलाकों से इतनी बड़ी संख्या में आने वाले मजदूरों के बच्चों के बारे में सोचा ही नहीं। अब यह कानून हमें उनके बारे में सोचने के लिए विवश करता है। भाषा के स्तर पर, प्रावधान के स्तर पर, शिक्षकों के प्रशिक्षण के स्तर पर, इनके प्रबंधन के स्तर पर कि कितने बच्चे कहां पढ़ेंगे, कितने समय पढ़ेंगे और उनका जो प्रमाण पत्र होगा वह क्या दिखाएगा जिससे कि जब वह बच्चा दो साल बाद पिता के साथ लौटेगा तो पुरानी जगह पर भी वह प्रमाण पत्र मान्य हो। एक प्रमाण पत्र की स्वीकृति की व्यवस्था राज्य सरकारों को बनानी होगी।

ये बातें सुनकर लगता है कि जैसे यह एक सपना है, एक ऐसा सपना है जो संभव ही नहीं है। यह कानून भी, ध्यान रखिए, सौ साल से एक सपना था और 2004-05 में लगने लगा था कि यह सपना अभी बहुत दूर है और सपना ही रहेगा। यह 1911 का सपना है जो 2009 में पूरा हुआ है। ऐसी कई बातें जो मैं आपसे कर रहा हूं, बहुत संभव है कि पूरा होने में बहुत समय लें। पंजाब सरकार जिस दिन 4000 तेलगू भाषी शिक्षकों को, उत्तरप्रदेश सरकार केरल की सिर्फ नर्सों को ही नहीं बल्कि मलयालम जानने वाले अनेक शिक्षकों को भर्ती करेगी वह दिन जाहिर है बहुत दूर है। लेकिन इस कानून की वजह से कई समस्याएं पहली बार बाधाओं और समस्याओं के रूप में चिह्नित हो पाई हैं, परिलक्षित हुई हैं और स्वीकृत हो गई हैं। उनका हल राज्य सरकारों और केन्द्र सरकार को निकालना है। इस अर्थ में मुझे लगता है कि अभी अगर बहुत जल्दी में देखेंगे तो शिक्षक पर ही पूरा वजन पड़ेगा लेकिन, कल के रोज या परसों के रोज यह पहचाना जाएगा कि शिक्षक इस मोर्चे पर अकेला नहीं लड़ सकता। शिक्षक तो सिपाही की भूमिका में है। अगर उसके पीछे शिक्षा के लेफ्टिनेंट और जर्नल्स नहीं हैं तो वह नहीं लड़ पाएगा और जर्नल साहब की शिक्षा तो होनी ही है।

प्रश्न : सार्वजनिक-निजी साझेदारी (पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप, पीपीपी) मॉडल इस समय काफी चर्चा में है। इस नए कानून और पीपीपी मॉडल में क्या तालमेल बैठ सकता है ?

उत्तर : देखिए, इसमें सबसे बड़ी जिम्मेदारी तो यह है कि निजी संस्थाओं को गरीब बच्चों को 25 प्रतिशत आरक्षण अविलम्ब देना है जो कि अभी सिर्फ दिल्ली में किसी हद तक लागू हुआ है। यह अब पूरे देश में लागू होगा। उस आरक्षण के तहत इन निजी स्कूलों को यह सीखना होगा कि जब कक्षा में मिली-जुली आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के बच्चे होते हैं तो कैसी चुनौतियां पैदा होती हैं और उन चुनौतियों का सामना करने के लिए स्कूल को किस-किस स्तर पर इंतजाम करना होगा। यह हमारे निजी स्कूलों को समझना होगा वरना दिल्ली में भी उन्होंने यह एक मन्त्र निकाला था कि हम दोपहर वाली पारी में इन गरीबों को अलग से कुछ पढ़ा देंगे। अभी-अभी दिल्ली न्यायालय ने इस तरह के एक स्कूल को डांट लगाई है कि आप इन बच्चों को दोपहर में नहीं पढ़ा सकते। इन बच्चों को बाकी स्कूल के बच्चों के साथ सुबह ही पढ़ाना होगा। इस तरह की स्थितियों से निजी स्कूल गुजरेंगे तो समझेंगे कि शिक्षा का मामला बच्चों को चुनकर या चुनिंदा बच्चों को कुछ पढ़ा देना नहीं है। बल्कि, ऐसी कक्षाओं का, ऐसी कक्षाओं में सीखने के वातावरण का निर्माण करना है जिसमें बच्चों की पृष्ठभूमि खुद सीखने का स्रोत बन जाती है। उनके शिक्षकों को भी यह सीखना होगा कि भाषा के स्तर पर, अगर आपने अंग्रेजी माध्यम अपना लिया है तो भी आपको ऐसे बच्चों से पेश आना होगा जिनके घर में अंग्रेजी का बिलकुल इस्तेमाल नहीं होता है और जिनके माता-पिता निरक्षर हैं। उन बच्चों को भी आपको अंग्रेजी सिखानी होगी एवं अन्य भाषाएं भी सिखानी होंगी।

लेकिन सार्वजनिक-निजी साझेदारी मॉडल का यह जुमला इस कानून में बिल्कुल नहीं है। यह जुमला इस समय एक बहस का विषय बना हुआ है। यह एक ऐसा जुमला है जिसको लेकर बहुत सोचने की जरूरत है। इस मुद्दे पर अभी किसी भी स्तर पर कोई सहमति नहीं बनी है। अगर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखें तो ऐसा लगता है कि यह जुमला

लंबे अंतराल से चली आ रही स्थिति को एक नया नाम देने का एक प्रयास है और नए नाम के बहाने उसको एक नई दिशा में मोड़ने का प्रयास है। अगर उस दृष्टिकोण से देखें तो मुझे उसके नाम से और उसकी दिशा, दोनों से बहुत दिक्कत लगती है। केंद्रीय शिक्षा मंत्री की हर महीने एक गोलमेज सभा होती है, उसमें भी यह मुद्दा उठाया गया था और यह बात बहुत शिद्दत से रखी भी गई थी कि जिस तरह से 'योजना आयोग' ने पीपीपी पर अभी एक दस्तावेज बनाया है उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस बात को स्वयं माननीय शिक्षा मंत्री महोदय ने भी स्वीकारा है कि इस मॉडल में अभी बहुत समस्याएं हैं। असली मुद्दा यही है कि अगर निजी संस्थाएं या कंपनियां स्कूल खोलने या प्रशिक्षण संस्थाएं खोलने के लिए सामने आती हैं तो उनकी क्या भूमिका हो ? वे इमारत बनाएं या शिक्षकों की नियुक्ति करें ? अगर वे लोग इमारतें बनाएंगे या उनका रख रखाव करेंगे, टेलीफोन की व्यवस्था करेंगे, शौचालय की सफाई के लिए व्यवस्था करेंगे तो मैं नहीं समझता कि इस पर किसी को बहुत ज्यादा आपत्ति होनी चाहिए। अगर शिक्षकों की नियुक्ति उनके हाथ में सौंप दी जाए, तो निश्चित रूप से यह एक बहुत ही गलत और घातक कदम होगा। शिक्षक का मुद्दा बहुत ही पेशेवर मसला है जिसको लेकर हमारे निजी स्कूलों ने कोई मिसाल कायम नहीं की है। अतः इसे एक दायरे में ही रखना जरूरी है और कोई यह नहीं कह रहा है कि अधिकारी-तन्त्र शिक्षक के ऊपर, कोई बहुत करुणामयी दृष्टि से देखती है। चाहे निजी प्रबंधन हो या सरकारी, दोनों की दृष्टि में शिक्षक एक बहुत ही दीन-हीन किस्म का प्राणी है। राज्य की संरचना में शिक्षक की नियुक्ति हो और राज्य की संरचना में उसकी सेवा शर्तें तय की जाएं तो एक लोकतांत्रिक ढंग से चीजों को बनाए रखने की, चीजों को सुधारने की मंशा कुछ पुख्ता होती है।

इसलिए पीपीपी नाम से जो इस समय एक चर्चित बहस चल रही है उसमें यह बात बहुत स्पष्टता से समझी जानी चाहिए कि जहां तक शिक्षकों या पाठ्यक्रम का और इस तरह के तमाम सवाल हैं, इनमें राज्य की बुनियादी भूमिका है और रहेगी। बाकी रख-रखाव के जो सवाल हैं अगर उनमें दान की भावना से लोग इमारत बनाना चाहते हैं तो बनाएं। राजस्थान को ही लें, पिछले दस-पंद्रह वर्षों में बनी गांव की शालाओं की इमारतें बहुत बेहतर हैं। यहां पर अधिकांश इमारतें बाहर पैसा कमाने के लिए गए हुए सेठों ने दान देकर बनवाई हैं। इस वजह से वे इमारतें बेहतर हो गई हैं। आप कह सकते हैं कि यह राजस्थान का एक पीपीपी मॉडल है, जिसके कारण एक पक्की साफ-सुथरी और कई जगह सुन्दर इमारत में सरकारी प्राथमिक स्कूल चल रहा है।

प्रश्न : मतलब, एक साफ दृष्टि हो कि अगर यह मॉडल लागू होता है तो किसकी क्या जिम्मेदारी होगी और कौन किस जिम्मेदारी को निभा सकता है ?

उत्तर : जी हां। भारत में इसी तरह की परंपरा रही है। इंण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, जो कि विज्ञान के क्षेत्र में भारत की सबसे नामी संस्था है, वह एक निजी संस्था के रूप में इसी तरह शुरू हुई थी, जिसको बाद में सरकार ने अनुदान दिया। आप टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज को भी ले सकते हैं। इस तरह की संस्थाओं से दिखाई देता है कि भारत में निजी पूंजी के शिक्षा में निवेश की परंपरा रही है। ऐसी संस्थाएं जो फिर सरकार के ढांचे में, उसकी अवधारणाओं के ढांचे में, उसके नियमों के ढांचे में चलती हैं और बहुत-सी पूरी तरह सरकारी होकर भी अपनी गुणवत्ता बनाए रख सकी हैं। पूरा का पूरा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय ही सार्वजनिक-निजी साझेदारी के मॉडल से बना है। उसके लिए मालवीय जी लोगों से पैसा जुटाने शहर-शहर, गांव-गांव गए और यह विश्वविद्यालय कलकत्ता, मुंबई, इलाहबाद जैसे विश्वविद्यालयों से इसीलिए भिन्न था क्योंकि वह सामुदायिक प्रयास से बना था। यह कोई नया मॉडल नहीं है, लेकिन उसको एक नया रूप देने की कोशिश की जा रही है जिस पर बहुत गंभीरता और पूरे चौकन्ने भाव से विचार होना चाहिए।

प्रश्न : इस कानून से होने वाली हलचल पर वापस आते हैं। आपके अनुसार इस कानून से केवल शिक्षा विभागों में ही हलचल नहीं होनी चाहिए, राजनीति विज्ञान के विभागों में भी एक नया अध्याय जुड़ेगा और कानून विभागों में इस तरह के, विशेष कार्यक्रम शुरू होंगे जिनमें शैक्षिक वकील तैयार होंगे। क्या ऐसी कोई हलचल अभी तक आपने सुनी है ?

उत्तर : देखिए, ऐसा है कि यह कानून संविधान में संशोधन करता है और यह छोटी-मोटी घटना नहीं है। बच्चों के

लिए जो 2002 में हुआ था वह अब जाकर के संशोधन बना है। बहुत कम लोग इसको समझते हैं कि संशोधन अभी तक हुआ ही नहीं था। वह केवल संशोधन का आलेख था जो पारित हुआ था, लेकिन वह कभी अधिसूचित (नोटिफाई) नहीं हुआ था। 2002 से 2009 का समय इसी गफलत में निकल गया है। संविधान का एक नया हिस्सा बना है जिसको संविधान के अध्येता अब पढ़ना शुरू करेंगे। संविधान के संबंध में जितने पाठ्यक्रम हैं चाहे वह राजनीति विज्ञान में हैं या कानून विज्ञान में हैं या समाजशास्त्र में; उन सभी में यह नया संस्करण पढ़ा जाएगा। जाहिर है, इसको लेकर अब एक नई समझ विकसित होगी। अब तक जितने भी मूलभूत अधिकार संविधान के चौथे हिस्से में दिए गए थे वे सभी अधिकार कुछ इस तरह के थे कि उनका उल्लंघन होने की स्थिति में, वह व्यक्ति जो कि उल्लंघन का शिकार बनता है, कुछ करने की स्थिति में था क्योंकि वह एक वयस्क था। यह पहला ऐसा अधिकार है जिससे लाभान्वित होने वाला उल्लंघन की स्थिति में खुद कुछ करने की स्थिति में नहीं है। यह संविधान को एक नए मोड़ पर पहुंचाने वाला कानून है जो कि देश और देश की संवैधानिक चेतना को झकझोड़ता है कि अब अगर आप इस अधिकार प्राप्त बालक के लिए कुछ नहीं करेंगे तो संविधान लगातार उल्लंघित होता रहेगा। यह हमारी सामूहिक चेतना और सामूहिक संवेदनशीलता पर निर्भर है कि हम संविधान की रक्षा, इस बहुत विशेष अधिकार के संदर्भ में, कैसे करें जिसका लाभ पाने वाला व्यक्ति अपनी रक्षा करने में असमर्थ है। निश्चित रूप से यह संविधान के विशेषज्ञों के लिए नई अवधारणात्मक चुनौती है। यहां से एक नया सामाजिक इतिहास और नया कानूनी इतिहास आरंभ होता है। यह फ्रांस जैसे देश में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में शुरू हुआ था। ब्रिटेन में पिछली शताब्दी के शुरू में आरंभ हुआ था और वह आज यहां शुरू हो रहा है। जैसे-जैसे समय बीतेगा इस कानून के अंग-प्रत्यंग धीरे-धीरे विकसित होंगे, नई राहें फूटेंगी, तब जाकर यह समझ में आएगा कि यह 2009 में क्या हुआ था।

प्रश्न : राष्ट्रीय स्तर पर क्या कोई ऐसी संस्था बनेगी जो यह सुनिश्चित करे कि इस कानून का पालन हो रहा है ? क्या निगरानी या इस तरह की कोई कानूनी संस्था का प्रावधान इस कानून में है ?

उत्तर : कानून में तो कहा ही गया है कि राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग इस कानून के अमल पर निगरानी रखेगा। अब इस आयोग को यह व्यवस्थाएं करनी हैं कि वह निगरानी का काम कैसे संभालेगा। यह निगरानी तो चप्पे-चप्पे पर होनी है। यह कोई उस तरह की निगरानी नहीं है कि केवल सियाचिन की चोटी पर ध्यान रखो कि दुश्मन वहां आ न जाए। यह निगरानी देश के हर गांव, हर शहर, हर टोले में, हर कक्षा में होनी है कि कहीं भी इस कानून का उल्लंघन न हो। इस आयोग के सामने यह एक जबरदस्त चुनौती है। यह आयोग अभी बहुत ही नई संस्था है, अभी-अभी हाल में कुछ वर्षों पहले बनी है। यह कह लीजिए कि उस संस्था का अभी शैशव काल चल रहा है और उस शैशव काल में जो-जो समस्याएं भारत के शिशुओं को आती हैं, उससे बहुत मिलती-झुलती समस्याएं अभी इस आयोग को सहन करनी पड़ रही हैं। उसके ऊपर अभी यह जिम्मेदारी आ गई है कि वह अपने शैशव काल को एकदम से झटके और बड़ा हो जाए।

प्रश्न : मतलब कोई नया ढांचा बनाया जाना है ? उस ढांचे के बारे में कुछ बताइए। हमारे यहां कई योजनाओं में निगरानी हुई है। हालांकि यह कानून की निगरानी है तो अलग तरह की निगरानी होगी पर किस तरह के खम्भों पर खड़ा होगा यह ढांचा ?

उत्तर : देखिए, यह जो निगरानी शब्द है उसमें एक नई व्यंजना, भारत के सामाजिक इतिहास में, इधर के दौर में एक तरह से पिरोई जानी शुरू हुई है। वरना निगरानी का अर्थ हमारे यहां प्राचीन काल से यही चल रहा कि 'नजर रखना' कि कोई गड़बड़ न हो। निगरानी का एक अर्थ यह भी होता है कि जो काम होना है वह आगे बढ़े। नजर रखने का एक बड़ा नकारात्मक-सा अर्थ रहता है कि सिपाही इधर से उधर घूमते रहें और कहीं कोई हरकत में न दिखाई दे। निगरानी का एक रचनात्मक अर्थ अब इन संस्थाओं के कारण शुरू हो रहा है कि रचना का काम आगे बढ़े और जहां-जहां विध्वंस हो, वहां-वहां दण्ड का प्रावधान हो और जिसको दण्डित किया जाए उसको समझाने का प्रयास भी किया जाए। कानून कहता है कि बच्चों को पीटा न जाए, उनको मानसिक यंत्रणा न दी जाए और अगर आज की तारीख में इस आधार पर हम लोगों को दण्डित करना शुरू करें तो आप पाएंगे कि ज्यादातर बच्चों का यह अनुभव होता है कि उन्हें दण्डित किया जाता है। ऐसे अध्यापक बहुत कम होंगे जिन्होंने अपने हाथों पर नियंत्रण रख छोड़ा

है कि उनका हाथ कभी किसी बच्चे के गाल पर नहीं पड़ेगा या बच्चे के कान को नहीं उमठेगा या वह हाथ कोई बेंत नहीं उठाएगा। इसका अर्थ अब यह है कि अगर निगरानी से शिक्षकों को दण्डित किया जाना होगा तो क्या हम लाखों शिक्षकों को पकड़कर जेल में बन्द कर दें। इससे तो कक्षाएं और भी खाली हो जाएंगी। निगरानी का एक आशय यह है कि हम शिक्षकों के प्रशिक्षण में माता-पिताओं और शिक्षकों के बीच संवाद में ऐसी स्थितियां उत्पन्न करें कि जिससे उनको समझ में आए कि बच्चों की पिटाई क्यों अनुचित है ?

प्रश्न : ऐसी स्थितियां भी होतीं हैं जिनमें अध्यापक विवश हो जाता है। कक्षाओं में बच्चे इतने ज्यादा होते हैं और संसाधन कम।

उत्तर : जी हां, आपने बिल्कुल सही कहा कि अध्यापक भी आज स्वयं एक पीड़ित, कमजोर, दीन-हीन किस्म का प्राणी है। जब उसके ऊपर बहुत ज्यादा दबाव पड़ता है जैसे सी.बी.ए.सी. का दबाव कई शिक्षकों पर पड़ रहा है कि उनको सतत मूल्यांकन करना है और एक भारी सारणी बनाकर करना है और मूल्यांकन करते ही रहना है। शिक्षक हर बच्चे का परीक्षण ले रहे हैं। प्रोफेसर यशपाल ने मुझे बताया कि एक स्कूल में अंकों के लिए अलग परीक्षण हो रहा है और ग्रेड देने के लिए अलग परीक्षण हो रहा है। एक की जगह दो-दो परीक्षण हो रहे हैं यह तो पहले से भी ज्यादा बुरी स्थिति उत्पन्न हो गई है। ये तमाम चीजें दिखाती हैं कि हमारा शिक्षक भी किस कदर हिंसा के लिए उकसाया जाता है या हिंसा के लिए उसे ठेला जाता है। व्यवस्था शिक्षक से वह काम करवाती है, जो बच्चे की प्रकृति को कुचलकर ही संभव है।

बाल अधिकार संरक्षण आयोग को स्वयं राष्ट्रीय स्तर पर एक बहुत पुख्ता संस्थान बनना होगा जिसमें बहुत-सी अकादमिक किस्म की जानकारी और समझ रखने वाले शिक्षा, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और विभिन्न विषयों के लोग हों। उनके मार्गदर्शन में हर राज्य में उस आयोग की इकाइयां स्थापित हों। फिर वे इकाइयां हर जिले में अपनी उप-इकाई, उस जिले की किसी संस्था जैसे डायट के साथ जोड़कर बनाएं। एनसीईआरटी ने सिफारिश की थी कि सर्व शिक्षा अभियान के तहत जो संसाधन केन्द्र बने थे उनको एक प्रखण्ड स्तर की एक डायट बना दिया जाए। संरक्षण आयोग की जो जिला स्तरीय इकाई होगी वह उस संसाधन केन्द्र के साथ काम करे और उसके नीचे जो संकुल स्तर पर, यानी 7-8 स्कूलों पर संस्था हो, उसको भी अब पुख्ता करने के लिए काम हो। बाल संरक्षण अधिकार आयोग की बात, संकुल स्तर का व्यक्ति अपने को बाल संरक्षण अधिकार आयोग का प्रतिनिधि समझ कर करे तब जाकर एक राष्ट्रीय व्यवस्था बन पाएगी। यह कोई चक्रवती सम्राट के एक आदेश से होने वाला काम नहीं है। इसे घर-घर में होना है। माता-पिता समझेंगे, शिक्षक समझेगा तब जाकर यह काम होगा। जाहिर है, बाल संरक्षण अधिकार आयोग के अधिकार के बहुत विस्तृत संस्थानीकरण और उसके अपने विकास का सवाल यह पैदा होता है। मुझे लगता है कि हर राज्य अपने स्तर पर इस काम को समझे और आगे बढ़ाए और राष्ट्रीय स्तर पर एक जबरदस्त कोशिश हो। अभी जो बाल संरक्षण अधिकार आयोग बना है वह तो एक बहुत ही शुरुआती ढांचा है जो कुछेक परामर्शदाताओं की मदद से किसी तरह गुजारा कर रहा है, हालांकि हमारे देश की बहुत ही अग्रणी और बहुत ही संवेदनशील नेता प्रोफेसर शान्ता सिन्हा उसकी इस समय अध्यक्षा हैं। मुझे बहुत जरूरी लगता है कि उनके कार्यकाल में ही इसके संस्थायी ढांचे को बहुत पुख्ता बनाया जाए।

प्रश्न : क्या इस कानून के पालन की निगरानी में मानव संसाधन विकास मंत्रालय की कोई भूमिका होगी ?

उत्तर : यह आयोग फिलहाल चूंकि 'महिला और बाल विकास' मंत्रालय के तहत चलता है इसलिए इसका मानव संसाधन मंत्रालय से कोई सीधा रिश्ता अभी नहीं बन पाया है। इस समय मानव संसाधन मंत्रालय ही इसकी मार्गदर्शिका तैयार कर रहा है। इसलिए तो एक बहुत बड़ा समन्वयन इन दोनों मंत्रालयों के भीतर होना है। एक बहुत बड़ी चुनौती है कि बच्चों को लेकर दो मंत्रालय एकजुट हों। यह एक बहुत बड़ी प्रेरणादायी शुरुआत होगी क्योंकि अभी कई और मसलों पर भी हम देखते हैं कि इन दो मंत्रालयों में अभी समन्वयन नहीं हुआ है। इस कानून में शायद इतनी ताकत है कि वह इस समन्वयन के लिए एक दबाव पैदा करेगा कि दोनों मंत्रालयों को, दो मंत्रियों को एक-दूसरे के करीब लाओ क्योंकि देश का हर बच्चा कह रहा है कि मेरा कष्ट दूर करना तुम दोनों के हाथ में है। ◆